यत्रोतमेतत्प्रोतं च विश्वमक्षरमव्ययम् । आधारभूतः सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः ॥८३॥
ॐ नमो विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनः पुनः । यत्र सर्वं यतः सर्वं यः सर्वं सर्वसंश्रयः ॥८४॥
सर्वगत्वादनन्तस्य स एवाहमवस्थितः । मत्तः सर्वमहं सर्वं मयि सर्वं सनातने ॥८५॥
अहमेवाक्षयो नित्यः परमात्मात्मसंश्रयः । ब्रह्मसंज्ञोऽहमेवाग्रे तथान्ते च परः पुमान् ॥८६॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे एकोनविंशतितमोऽध्यायः ॥१९॥

बीसवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

एवं सञ्चिन्तयन्विष्णुमभेदेनात्मनो द्विज । तन्मयत्वमवाप्याग्र्यं मेने चात्मानमच्युतम् ॥१॥
विसस्मार तथात्मानं नान्यत्किञ्चिदजानत । अहमेवाव्ययोऽनन्तः परमात्मेत्यचिन्तयत् ॥२॥
तस्य तद्भावनायोगात्क्षीणपापस्य वै क्रमात् । शुद्धेऽन्तःकरणे विष्णुस्तस्थौ ज्ञानमयोऽच्युतः ॥३॥
योगप्रभावात्प्रह्लादे जाते विष्णुमयेऽसुरे । चलत्युरगबन्धैस्तैर्मैत्रेय त्रुटितं क्षणात् ॥४॥
भ्रान्तग्राहगणः सोर्मिर्ययौ क्षोभं महार्णवः । चचाल च मही सर्वा सशैलवनकानना ॥५॥

जो जगत् के प्रधान कारण हैं, तथा योगिजन जिनका ध्यान किया करते हैं, वे अव्यय भगवान् मेरे ऊपर प्रसन्न हों॥८२॥ जिन अव्यय तथा अक्षर स्वरूप श्रीहरि में यह जगत् ओत-प्रोत है जो सम्पूर्ण जगत् के आधार हैं, वे भगवान् विष्णु मुझ पर प्रसन्न हों ॥८३॥ जिनमें सम्पूर्ण जगत् स्थित है, जिनसे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है, जो सर्वस्वरूप हैं, तथा सबों के आधार स्वरूप हैं, उन ओङ्कार स्वरूप भगवान् विष्णु को बारम्बार नमस्कार है ॥८४॥ चूकि भगवान् अनन्त सर्वव्यापक हैं, मैं भी तदात्मक ही हूँ । अतएव सारा जगत् मुझ से ही उद्भूत है, मैं सर्व स्वरूप हूँ और मुझ सनातन में ही सबकुछ अवस्थित है ॥८५॥ मैं ही अक्षय, नित्य, आत्माधार तथा परमात्मा हूँ । मैं ही जगत् के आदि तथा अन्त में स्थित ब्रह्मसंज्ञक परमपुरुष हूँ ॥८६॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के उन्नीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥१९॥

प्रह्लाद कृत भगवत् स्तुति और भगवान् का आविर्भाव

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— हे द्विज ! अपने से अभिन्न रूप से इस प्रकार से भगवान् विष्णु का ध्यान करते हुए प्रह्लाद जी उत्तमकोटि की तन्मयता को प्राप्त करके अपने को अच्युत रूप से अनुभव करने लगे ॥१॥ उस समय उन्हें भगवान् विष्णु से अतिरिक्त कुछ भी नहीं प्रतीत होता था वे अपने को भी भूल गये । वे सोचने लगे कि मैं ही अव्यय, अनन्त तथा परमात्मा हूँ ॥२॥ इस तरह से उनकी भावना के हो जाने से उनके सारे पाप (कर्म) विनष्ट हो गये और उनके शुद्ध अन्तःकरण में ज्ञान स्वरूप भगवान् अच्युत स्थित हो गये ॥३॥ हे मैत्रेय ! इस प्रकार के योगबल से असुर प्रह्लादजी के विष्णु स्वरूप हो जाने पर उनके विचलित होते ही क्षणभर में ही सर्पों का बन्धन टूट गया ॥४॥ घूमते हुए ग्राह समूह और उन्नत लहरों से महासागर क्षुब्ध हो गया पर्वतों तथा बनों से युक्त सम्पूर्ण पृथिवी

स च तं शैलसंघातं दैत्यैर्न्यस्तमथोपरि । उत्क्षिप्य तस्मात्सलिलान्निश्चक्राम महामतिः ॥६॥
दृष्ट्वा च स जगद्भूयो गगनाद्युपलक्षणम् । प्रह्लादोऽस्मीति सस्मार पुनरात्मानमात्मनि॥७॥
तुष्टाव च पुनर्धीमाननादिं पुरुषोत्तमम् । एकाग्रमतिरव्यग्रो यतवाक्कायमानसः ॥८॥

प्रह्लाद उवाच

ॐ नमः परमार्थार्थ स्थूलसूक्ष्म क्षराक्षर । व्यक्ताव्यक्त कलातीत सकलेश निरञ्जन ॥९॥
गुणाञ्जन गुणाधार निर्गुणात्मन् गुणस्थित। मूर्त्तामूर्तमहामूर्ते सूक्ष्ममूर्ते स्फुटास्फुट ॥१०॥
करालसौम्यरूपात्मन्विद्याऽविद्यामयाच्युत । सदसद्रूपसद्भाव सदसद्भावभावन ॥११॥
नित्यानित्यप्रपञ्चात्मन्निष्प्रपञ्चामलाश्रित । एकानेक नमस्तुभ्यं वासुदेवादिकारण ॥१२॥
यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो यः सर्वभूतो न च सर्वभूतः ।
विश्वं यतश्चैतदविश्वहेतोर्नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥१३॥

श्रीपराशर उवाच

तस्य तच्चेतसो देवः स्तुतिमित्थं प्रकुर्वतः । आविर्बभूव भगवान् पीताम्बरधरो हरिः ॥१४॥
ससम्भ्रमस्तमालोक्य समुत्थायाकुलाक्षरम् । नमोऽस्तु विष्णवेत्येतद् व्याजहारासकृद् द्विज॥१५॥

प्रह्लाद उवाच

देव प्रपन्नार्त्तिहर प्रसादं कुरु केशव । अवलोकनदानेन भूयो मां पावयाच्युत ॥१६॥

काँप गयी ॥५॥ वे महामति प्रह्लादजी दैत्यों के द्वारा रखे गये पर्वतों को अपने ऊपर से हटाकर जल से बाहर निकले॥६॥ आकाश इत्यादि से युक्त जगत् को देखकर उन्हें इस बात की प्रतीति हुयी कि मैं प्रह्लाद हूँ ॥७॥ उसके पश्चात् महाबुद्धिमान प्रह्लादजी मन, वाणी और शरीर को संयमित करके पुनः अनादि पुरुषोत्तम श्रीभगवान् की स्तुति करने लगे ॥८॥ **प्रह्लादजी ने कहा—** हे अविनाशी ! परमार्थ स्वरूप ओङ्कार स्वरूप, अर्थ (प्रयोजन) स्वरूप, स्थूल सूक्ष्म तथा कारण स्वरूप ! अक्षर तथा क्षर स्वरूप भगवन् आपको नमस्कार है । हे व्यक्त (महदादि) अव्यक्त (प्रधान) स्वरूप, हे कलातीत ! (निर्भाग स्वरूप), सम्पूर्ण जगत् के स्वामिन्, हे निरञ्जन (अखिल हेय प्रत्यनीक) हे गुणाञ्जन, हे निर्गुणात्मन् (प्राकृतिक गुणों से रहित) गुणस्थित (प्रकृति के भी भीतर नियामक रूप से स्थित) मूर्तामूर्त (स्थूल सूक्ष्म) भीतर प्रपञ्चात्मक महामूर्ते, हे सूक्ष्ममूर्ते (व्यूहस्वरूप) स्फुट (विभवरूप) अस्फुट (परस्वरूप), संहारादिकार्यों में कराल स्वरूप, पालनादि कर्मों में सौम्य स्वरूप, आत्म स्वरूप, विद्या (ज्ञान) तथा अविद्या (विद्याङ्ग कर्म स्वरूप) भगवन् अच्युत, सदसद्रूप ! (चेतन चेतनात्मक जगत् स्वरूप) सद सद्भाव स्वरूप भगवन् आपको नमस्कार है॥९-११॥ हे नित्यानित्य स्वरूप ! हे सम्पूर्ण प्रपञ्च के आत्म स्वरूप हे निष्प्रपञ्च ! (प्रपञ्च से पृथक्) रहने वाले हे अमलाश्रित! (ज्ञानी पुरुषों के आश्रय स्वरूप) हे एकानेक ! (कारणवस्था में एक तथा कार्यावस्था में अनेक रूप से रहने वाले) हे जगत् के आदि कारण भगवान् वासुदेव ! आपको नमस्कार है ॥१२॥ जो भगवान् स्थूल तथा सूक्ष्म स्वरूप हैं स्फुट प्रकाश स्वरूप हैं, सम्पूर्ण जगत् की अन्तरात्मा होने के कारण सर्व जगत् शरीरक है; किन्तु स्वयं जगत् से भिन्न हैं, जिनसे सम्पूर्ण विश्व उद्भूत है, तथा जगत् जिनका कारण नहीं है, इस तरह के समस्त पुरुषों से उत्तम श्रीभगवान् को मेरा नमस्कार है ॥१३॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** इस तरह से स्तुति करने वाले श्रीप्रह्लादजी के हृदय में दिव्यगुण सम्पन्न, पीताम्बरधारी भगवान् श्रीहरि आविर्भूत हो गये ॥१४॥ श्रीभगवान् को सहसा प्रकट हुए देखकर प्रह्लादजी उठकर खड़े हो गये और भगवान् विष्णु को नमस्कार है, भगवान् विष्णु को नमस्कार है ! इस तरह से

श्रीभगवानुवाच

कुर्वतस्ते प्रसन्नोऽहं भक्तिमव्यभिचारिणीम्। यथाभिलषितो मत्तः प्रह्लाद व्रियतां वरः॥१७॥

प्रह्लाद उवाच

नाथ योनिसहस्रेषु येषु येषु व्रजाम्यहम्। तेषु तेष्वच्युताभक्तिरच्युतास्तु सदा त्वयि॥१८॥
या प्रीतिरविवेकानां विषयेष्वनपायिनी। त्वामनुस्मरतः स मे हृदयान्मापसर्पतु॥१९॥

श्रीभगवानुवाच

मयि भक्तिस्तवास्त्येव भूयोऽप्येवं भविष्यति। वरस्तु मत्तः प्रह्लाद व्रियतां यस्तवेप्सितः॥२०॥

प्रह्लाद उवाच

मयि द्वेषानुबन्धोऽभूत्संस्तुतावुद्यते तव। मत्पितुस्तत्कृतं पापं देव तस्य प्रणश्यतु॥२१॥
शस्त्राणि पातितान्यङ्गे क्षिप्तो यच्चाग्निसंहतौ। दंशितश्चोरगैर्दत्तं यद्विषं मम भोजने॥२२॥
बद्ध्वा समुद्रे यत्क्षिप्तो यच्चितोऽस्मि शिलोच्चयैः। अन्यानि चाप्यसाधूनि यानि पित्रा कृतानि मे॥२३॥
त्वयि भक्तिमतो द्वेषादघं तत्सम्भवं च यत्। त्वत्प्रसादात्प्रभो सद्यस्तेन मुच्येत मे पिता॥२४॥

श्रीभगवानुवाच

प्रह्लाद सर्वमेतत्ते मत्प्रसादाद्भविष्यति। अन्यच्च ते वरं दद्मि व्रियतामसुरात्मज॥२५॥

प्रह्लाद उवाच

कृतकृत्योऽस्मि भगवन् वरेणानेन यत्त्वयि। भवित्री त्वत्प्रसादेन भक्तिरव्यभिचारिणी॥२६॥
धर्मार्थकामै किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता। समस्तजगतां मूले यस्य भक्ति स्थिरा त्वयि॥२७॥

बारम्बार कहने लगे ॥१५॥ **श्रीप्रह्लादजी ने कहा—** हे शरणागत जीवों के कष्ट को विनष्ट करने वाले भगवन् केशव ! आप प्रसन्न हों आप अपने और अपने पवित्र दर्शन के द्वारा मुझे पवित्र बनायें ॥१६॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** अनन्या भक्ति करने वाले तुम्हारे ऊपर मैं प्रसन्न हूँ। हे प्रह्लाद ! तुम अपने मनोभिलषित वरदान को मुझसे माँगो ॥१७॥ **श्रीप्रह्लादजी ने कहा—** हे नाथ ! हे भगवन् अच्युत ! मैं चाहे जिस योनि में जन्म लूँ उन सभी योनियों में मेरी आप में सुदृढ भक्ति बनी रहे ॥१८॥ विवेकहीन (अज्ञानी) जीवों की अविचल भक्ति जैसे विषयों में बनी रहती है, उसी तरह की मेरी अविचल भक्ति आपमें बनी रहे। वह भक्ति मेरे हृदय से कभी भी दूर न हो॥१९॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** प्रह्लाद तुम्हारी मुझमें भक्ति तो है ही और वह पुनः होयेगी भी, तुम अपने अभिलषित वरदान को मुझसे माँगो ॥२०॥ **श्रीप्रह्लादजी ने कहा—** हे देव ! आपकी स्तुति में लगे रहने के कारण मेरे पिताजी के चित्त में जो द्वेष उत्पन्न हुआ है उस द्वेषजन्य जो उनका पाप है वह विनष्ट हो जाय ॥२१॥ किञ्च उनकी आज्ञा से मेरे शरीर पर जो शास्त्राघात किया गया, मुझे अग्नि समूह में डाल दिया गया, जो मुझे सर्पों से कटवाया गया, मुझे भोजन में विष दिया गया, मुझे बाँधकर समुद्र में फेंक दिया गया और जो मुझे पर्वतों से दबा दिया गया, इसके अतिरिक्त जो दुर्व्यवहार मेरे पिता ने मेरे साथ किया, वे सब आप में भक्ति करने वाले मेरे प्रति द्वेष करने से जो पाप उनको लगा है, उन पापों से मेरे पिताजी मुक्त हो जायँ ॥२२-२४॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** हे असुर कुमार ! मेरी कृपा से तुम्हारी ये सारी इच्छाएँ पूरी होंगी, तुम्हें एक और वरदान मैं देता हूँ उसे तुम माँग लो ॥२५॥ **श्रीप्रह्लादजी ने कहा—** हे भगवन् ! मैं तो आपके इसी वरदान से कृत-कृत्य हूँ कि आपकी कृपा से आपमें मेरी अनन्या भक्ति होगी॥२६॥ भगवन् जिसकी भक्तिमयी स्थिरा भक्ति जगत् का कारण स्वरूप आपमें है, उसके हाथ में मुक्ति होती है। उसको धर्म, अर्थ तथा काम से क्या प्रयोजन है ?॥२७॥ **श्रीभगवान् ने कहा—** प्रह्लाद ! जिस तरह तुम्हार मन

श्रीभगवानुवाच

यथा ते निश्चलं चेतो मयि भक्तिसमन्वितम्। तथा त्वं मत्प्रसादेन निर्वाण परमाप्स्यसि ॥२८॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्त्वान्तर्दधे विष्णुस्तस्य मैत्रेय पश्यतः। स चापि पुनरागम्य ववन्दे चरणौ पितुः ॥२९॥
तं पिता मूर्ध्न्युपाघ्राय परिष्वज्य च पीडितम्। जीवसीत्याह वत्सेति बाष्पार्द्रनयनो द्विज ॥३०॥
प्रीतिमांश्चाऽभवत्तस्मिन्ननुतापी महासुरः। गुरुपित्रोश्चकारैवं शुश्रूषां सोऽपि धर्मवित् ॥३१॥
पितर्युपरतिं नीते नरसिंहस्वरूपिणा। विष्णुना सोऽपि दैत्यानां मैत्रेयाभूत्पतिस्ततः ॥३२॥
ततो राज्यद्युतिं प्राप्य कर्मशुद्धिकरीं द्विज। पुत्रपौत्रांश्च सुबहूनवाप्यैश्वर्यमेव च ॥३३॥
क्षीणाधिकारः स यदा पुण्यपापविवर्जितः। तदा स भगवद्ध्यानात्परं निर्वाणमाप्तवान् ॥३४॥
एवं प्रभावो दैत्योऽसौ मैत्रेयासीन्महामतिः। प्रह्लादो भगवद्भक्तो यं त्वं मामनुपृच्छसि ॥३५॥
यस्त्वेतच्चरितं तस्य प्रह्लादस्य महात्मनः। श‍ृणोति तस्य पापानि सद्यो गच्छन्ति संक्षयम् ॥३६॥
अहोरात्रकृतं पापं प्रह्लादचरितं नरः। श‍ृण्वन् पठंश्च मैत्रेय व्यपोहति न संशयः ॥३७॥
पौर्णमास्याममावास्यामष्टम्यामथ वा पठन्। द्वादश्यां वा तदाप्नोति गोप्रदानफलं द्विज ॥३८॥
प्रह्लादं सकलापत्सु यथा रक्षितवान्हरिः। तथा रक्षति यस्तस्य श‍ृणोति चरितं सदा ॥३९॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

मुझमें निश्चल बना रहता है, उसके कारण तुम मेरी कृपा से परम निर्वाण (मुक्ति) को प्राप्त करोगे ॥२८॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** इस तरह से कहकर भगवान् विष्णु उसकी आँखों के सामने से अन्तर्धान हो गये और प्रह्लादजी भी आकर अपने पिता के चरणों की वन्दना किए ॥२९॥ हे द्विज ! पिता हिरण्यकशिपु ने जिसे अनेक प्रकार से पीड़ित किया था उस प्रह्लाद का आलिङ्गन किया उस समय हिरण्यकशिपु की आँखों में आँसू भरा हुआ था ॥३०॥ वह महान् असुर अपने किए हुए कर्मों के लिए पश्चाताप करके पुन: प्रह्लादजी से प्रेम करने लगा और धर्मज्ञ प्रह्लादजी भी अपने गुरुजनों तथा पिता के सेवा करने लगे ॥३१॥ हे मैत्रेय ! नृसिंहरूप धारी भगवान् विष्णु के द्वारा अपने पिता के मार दिए जाने पर प्रह्लादजी भी दैत्यों के स्वामी हुए ॥३२॥ हे द्विज ! प्रारब्ध कर्म का नाश करने वाली राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करके, अनेक पुत्रों तथा ऐश्वर्य को प्राप्त करके, कर्म के अधिकार के क्षीण हो जाने पर जब प्रह्लादजी पुण्य एवं पाप से रहित हो गये, तब वे श्रीभगवान् का ध्यान करके मुक्ति को प्राप्त कर लिए ॥३४॥ हे मैत्रेय ! जिसके विषय में तुमने मुझसे पूछा है उन महा बुद्धिमान् भगवदभक्त दैत्यवंशोद्भूत प्रह्लाद का ऐसा ही प्रभाव था ॥३५॥ जो व्यक्ति उन महात्मा प्रह्लादजी के इस चरित का श्रवण करता है उसके सारे पाप सद्य: विनष्ट हो जाते हैं ॥३६॥ हे मैत्रेय ! प्रह्लाद के इस चरित्र को पढ़ने वाले तथा सुनने वाले मनुष्यों के दिन तथा रात के किए हुए पाप विनष्ट हो जाते हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है ॥३७॥ हे द्विज ! पूर्णिमा, अमावस्या, अष्टमी अथवा दादशीं तिथि को इसको पढ़ने वाला व्यक्ति गोदान करने का फल प्राप्त करता है ॥३८॥ जो व्यक्ति सदा प्रह्लाद के चरित का श्रवण करता है, उसकी रक्षा श्रीहरि उसी तरह किया करते हैं जिस तरह वे प्रह्लाद की रक्षा किया करते थे ॥३९॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के बीसवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥२०॥